विश्व को जैनदर्शन की देन

—डा० द० ग० जोशी, एम० ए०, पी-एच० डी०

विश्व के सभी दर्शनों का संलक्ष्य सामान्य रूप से मानव को उत्तम शिक्षा प्रदान कर उसके अंतिम कल्याण की ओर अग्रसर करना है। विज्ञों ने इस अंतिम कल्याण को पृथक्-पृथक् संज्ञा प्रदान की है। कितने ही उसे स्वर्ग, कितने ही उसे मोक्ष, कितने ही शाश्वत सुख-प्राप्ति का स्थान, प्रभृति विविध नामों से अभिहित करते हैं। नाम पृथक्-पृथक् होने पर भी सभी दर्शनों का संलक्ष्य मानव को जन्म-मरण, सुख-दुःख, रोग-व्याधि आदि के भय व चिन्ता से मुक्ति दिलाना है और नित्य आनन्दमय पद की उपलब्धि कराना है।

प्रस्तुत पद को प्राप्त करने हेतु विभिन्न दर्शनों ने पृथक्-पृथक् मार्ग सूचित किये हैं। किसी ने ज्ञानयोग पर बल दिया है, तो किसी ने कर्मयोग पर और किसी ने भक्तियोग पर बल दिया है। न्याय, सांख्य, वेदान्त, मीमांसक, योग, बौद्ध-दर्शन की तरह भारतीय परम्परा में जैनदर्शन का भी विशिष्ट स्थान है। आज के आधुनिक वैज्ञानिक युग में मानव को सभी प्रकार के शारीरिक सुख सहज रूप से प्राप्त हैं। वैज्ञानिक साधनों की प्रचुरता से मानव ने पाँच भूतों पर अधिकार-सा स्थापित कर लिया है। प्रत्येक भौतिक सुख उसे सहज ही उपलब्ध होने लगा है। तथापि जीवन में जो शांति अपेक्षित है वह उपलब्ध नहीं हो पा रही है। जैनदर्शन के अभिमतानुसार शांति का अक्षय कोष मानव के अन्तर में ही रहा हुआ है। उच्च विचार, सादा जीवन और जन-जन के कल्याण की पुनीत भावनाओं से ही मानव को शांति प्राप्त हो सकती है। यही कारण है पाश्चात्य मनीषीगण भी जैनदर्शन की ओर सहज रूप से आकर्षित हो रहे हैं।

जैन-दर्शन में अहिंसा सम्बन्धी जितना गहराई से विशद चिन्तन किया है और जो उसकी सूक्ष्म चर्चाएँ की हैं वे विश्व के अन्य दर्शनों में उपलब्ध नहीं हैं। वेद और उपनिषद्, भारतीय साहित्य की अनमोल उपलब्धि हैं तथापि वेद और उपनिषदों में जो अहिंसा का वर्णन है, वह जैन साहित्य की तरह गहराई से नहीं हो सका है। वेद और उपनिषदों में यज्ञ में होने वाली हिंसा तथा अन्यान्य भौतिक सुखों के लिए की गयी हिंसा त्याज्य नहीं मानी है। परन्तु जैन-दर्शन में सभी प्रकार की हिंसा को त्याज्य माना है। यहाँ तक कि हिंसा करने वाले का अनुमोदन करना भी पाप माना है।

जैनदर्शन में हिंसा को तीन रूपों में विभक्त किया है। केवल काय के द्वारा ही हिंसा नहीं होती, किन्तु मन और वचन से भी हिंसा होती है। वचन के द्वारा किसी के मानस को व्यथित करना, मन के द्वारा किसी के सम्बन्ध में अशुभ विचार करना भी हिंसा है। जैनधर्म का यह मूल सिद्धान्त है—इस विराट् विश्व में जितने भी प्राणी हैं चाहे वे चर हैं, चाहे अचर हैं, चाहे सूक्ष्म हैं, चाहे स्थावर हैं, सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं। कोई भी प्राणी मरना पसन्द नहीं करता। अतः किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। शरीर से ही नहीं, वाणी और मन से भी उन्हें कष्ट नहीं देना चाहिए। साधक के अन्तर्मानस में प्रेम भावना इतनी विकसित होनी चाहिए कि सभी के प्रति उसके मानस में प्रेम का पयोधि उछालें मारता रहे। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त स्वामी रामदास ने कहा—कि वही महान् व्यक्ति है जो पहले करता है और फिर कहता है। जहाँ कहने और करने में एकरूपता नहीं होती वहाँ व्यक्ति महापुरुष की कोटि में नहीं आ सकता। प्रेमपूर्ण सद्व्यवहार कहने की नहीं, अपितु जीवन के व्यवहार में लाने की वस्तु है।

श्रमण भगवान महावीर एक अत्युच्च कोटि के महापुरुष थे। उनके बताये हुए सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पच्चीससौ वर्ष का सुदीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी आज भी उसमें वही चमक और दमक है। भगवान महावीर ने कहा—हिंसा से हिंसा बढ़ती है और अहिंसा से प्रेम की वृद्धि होती है। उन्होंने कहा ही नहीं किन्तु अपने जीवन में आचरण कर यह सिद्ध कर दिया कि वस्तुतः अहिंसा का कितना गौरवपूर्ण स्थान है। अहिंसा की निर्मल भावना विकसित होने पर जीवन में सहिष्णुता बढ़ती है जिससे साधक परीषहों को हँसते और मुस्कराते हुए सहन कर सकता है। परीषहों को सहन करने से सहिष्णुता के साथ वह जितेन्द्रिय भी बन जाता है।

पाश्चात्य मूर्धन्य मनीषियों का ध्यान जैन-दर्शन के प्रति आकर्षित हुआ है। मेरी दृष्टि से उसका मुख्य कारण अन्य कारणों के साथ जैनधर्म की सहिष्णुता है। सहिष्णुता से मन शान्त रहता है, कष्टों को सहन करने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें अपार शक्ति पैदा होती है। पाश्चात्य देशों का सामाजिक जीवन अशान्त है। वहाँ पर मानसिक अशान्ति के काले-कजरारे बादल मंडरा रहे हैं। क्षणिक शान्ति के लिए वे औषधियों का उपयोग करते हैं, नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं और कामवासना के पीछे पागल कुत्तों की तरह घूमते हैं। तथापि शान्ति उपलब्ध नहीं होती, अपितु द्रौपदी के दुकूल की तरह अशान्ति बढ़ती चली जाती है। यदि वे जैनधर्म प्रतिपादित सहिष्णुता को अपना लें तो उनके जीवन में शान्ति का साम्राज्य हो सकता है, सुख की वंशी की सुरीली स्वर-लहरियाँ झनझना सकती हैं। सहिष्णुता के कारण ही भारत में विभिन्न मतावलम्बी स्नेह और सद्भावना के साथ परस्पर मिलते हैं और आनन्द के साथ विचार-चर्चाएँ करते हैं। सहिष्णुता जैन-दर्शन की एक महान् उपलब्धि है, यह निःस्संकोच कहा जा सकता है।

जैनदर्शन की द्वितीय महत्त्वपूर्ण विशेषता अपरिग्रह है। श्रमण भगवान महावीर पूर्ण अपरिग्रही थे। उन्होंने मानव को अधिकाधिक सुखी बनाने हेतु अपरिग्रह का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रदान किया। अपरिग्रह का अर्थ है—पदार्थ के प्रति आसक्ति का न होना। आसक्ति के कारण ही मानव अधिकाधिक संग्रह करता है। किन्तु मानव की इच्छाएँ आकाश के समान असीम हैं और पदार्थ ससीम है। इस कारण उसकी इच्छा की तृप्ति कभी नहीं होती और पूर्ति न होने पर वह अपने आपको दुःखी अनुभव करता है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार भी संपत्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होती रहनी चाहिए। यदि संपत्ति का विनिमय होता रहा तो विषमता पनप नहीं सकती। सर्वत्र समता ही की अभिवृद्धि होगी। भगवान महावीर मानवीय व्यवहार को सम्यक्प्रकार से जानते थे। उन्होंने अपरिग्रह सिद्धान्त की संस्थापना कर जन-जीवन को अधिकाधिक सुखी बनाने का प्रयास किया। श्रमणों के लिए केवल धर्मोपकरण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न रखने का आदेश दिया और जो धर्मोपकरण रखे जायें उस पर भी आसक्ति न रखी जाय। आसक्ति न रखने के कारण ही धर्मोपकरण परिग्रह रूप नहीं है और जैन श्रावकों के लिए जो गृहस्थाश्रम में है गृहस्थ जीवन चलाने के लिए उन्हें परिग्रह की आवश्यकता होती है, पर परिग्रह की मर्यादा करने का विधान संस्थापित किया। परिग्रह रखे, पर मर्यादा से अधिक न रखे। यह मर्यादा सामाजिक जीवन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

जैनदर्शन की तृतीय महत्त्वपूर्ण विशेषता अनेकान्तवाद है। अहिंसा और अपरिग्रह की चर्चा अन्य धर्मों के साहित्य में भी है। उन्होंने भी अहिंसा और अपरिग्रह के सम्बन्ध में जैनदर्शन जितना तो नहीं किन्तु सामान्य रूप से उस पर चिन्तन किया है। पर अनेकान्तवाद जैनदर्शन की अपनी एक अनूठी विशेषता है। अनेकान्तवाद का अर्थ है—सत्य को विविध दृष्टियों से समझना। सत्य अनन्त है। वह अनन्त सत्य विविध दृष्टि से ही समझा जा सकता है। जानने का कार्य ज्ञान का है और बोलने का कार्य वाणी का है। ज्ञान की शक्ति अपरिमित है, पर वाणी की परिमित है। ज्ञेय और ज्ञान अनन्त है पर वाणी अनन्त नहीं हैं। एक क्षण में आत्मा अनन्त ज्ञेयों को जान सकता है पर वाणी के द्वारा उसे व्यक्त नहीं कर सकता। एक शब्द एक क्षण में एक सत्य को बता सकता है, पूर्ण सत्य को नहीं। एतदर्थ ही जैन-दर्शन ने स्याद्वाद या अनेकान्तवाद का प्रयोग किया। स्याद्वाद के द्वारा सत्य को विविध रूप से समझा जा सकता है। स्याद्वाद में दो शब्द संयुक्त हैं—स्याद् और वाद। स्याद् का अर्थ अपेक्षा है और वाद का अर्थ कथन है। अपेक्षा विशेष से जो प्रतिपादन किया जाता है वह स्याद्वाद है। स्याद्वाद का उद्गम अनेकान्त वस्तु है। स्याद्वाद उस अनेकान्त वस्तु को व्यक्त करने की एक पद्धति है। वह अपेक्षाभेद से विरोधी धर्म-युगलों का विरोध नष्ट करता है। जो वस्तु सत् है वही असत् भी है, पर जिस रूप में सत् है उस रूप से वह असत् नहीं है। वह स्व-रूप की दृष्टि से सत् है किन्तु पर-रूप की दृष्टि से असत् है। दो निश्चित दृष्टि-बिन्दुओं के आधार पर वस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करने वाला वाक्य कभी भी संशय रूप नहीं हो सकता। स्याद्वाद को अपेक्षावाद या कथंचित्वाद भी कहा जा सकता है। एतदर्थ ही भगवान महावीर ने कहा—प्रत्येक धर्म को अपेक्षा से ग्रहण करो। सत्य सापेक्ष है। एक सत्यांश के साथ लगे हुए या छिपे हुए अनेक सत्यांशों को ठुकराकर यदि कोई उसे पकड़ना चाहे तो वह सत्यांश भी असत्यांश बन जायगा। भगवान महावीर ने अनेकान्त को दार्शनिक क्षेत्र तक ही सीमित न रखा। उसे उन्होंने जीवन व्यवहार में भी उतारा। अनेकान्त के द्वारा विश्व की प्रत्येक समस्या का सही समाधान हो सकता है। सामाजिक मतभेद समाप्त होकर स्नेह, सद्भावना और सहिष्णुता की अभिवृद्ध हो सकती है।

सारांश यह है कि जैन-दर्शन ने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद के सिद्धान्तों की संस्थापना कर मानव-जीवन में पनपती हुई विषमताएँ असहिष्णुता तथा परिग्रहवृत्ति की बढ़ती हुई भावनाओं पर नियन्त्रण किया। ये तीनों शाश्वत सिद्धान्त हैं। इन तीनों पर भगवान महावीर के पश्चात् होने वाले तत्त्वदर्शी आचार्यों ने संस्कृत व प्राकृत भाषा में विराट साहित्य का सृजन कर हमें प्रेरणा दी कि तुम इन सिद्धान्तों को अपनाओ। यदि आधुनिक विज्ञान की चकाचौंध में पनपने वाला मानव इस सिद्धान्तों को अपना ले तो विश्व का कायाकल्प कुछ ही समय में हो सकता है। ☆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org